साक्षात्कार

फिल्म समीक्षक दीपक दुआ के साथ तेजस पूनिया की बातचीत

दीपक दुआ

1993 से फ़िल्म पत्रकारिता में सक्रिय फिल्म समीक्षक दीपक दुआ, गत 2 वर्षों से अपने ब्लॉग सिनेयात्रा डॉट कॉम पर स्वतंत्र फिल्म लेखन एवं समीक्षाएँ कर रहे हैं। फिल्म जगत के अलावा वे ट्रेवल ब्लॉगर भी हैं तथा फ़िल्मी कल्याण पत्रिका के पूर्व एसोसिएट एडिटर रह चुके हैं। दीपक दुआ की समीक्षाएँ विभिन्न अखबारों, पत्रिकाओं, वेबसाईट आदि में प्रकाशित होती रहती हैं तथा रेडियो एवं टेलीविजन, डी० डी० न्यूज आदि पर भी वे बतौर फिल्म समीक्षक देखे जाते हैं।

तेजस पूनिया

तेजस पुनिया, पूर्व स्नातकोत्तर हिंदी, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय के छात्र हैं। साहित्य और सिनेमा में इनकी गहरी रूचि है। इन्होने बहुत ही कम समय में तमाम फिल्मों पर समीक्षाएं, साहित्यिक लेख, कहानियां और कविताएँ लिखकर अपनी एक पहचान स्थापित की है।

तेजस पूनिया : *सिनेमा में महिलाओं की भूमिका को कितना अहम मानते हैं ?*

दीपक दुआ : सिनेमा में महिलाओं की भूमिका हमेशा से अहम रही है। सिनेमा हमारे का ही तो दर्पण है। तो जब हम समाज की कल्पना महिलाओं के बिना नहीं कर सकते, तो सिनेमा कैसे उनके बिना चल सकता है। न सिर्फ पर्दे पर बल्कि पर्दे के पीछे भी महिलाओं ने भारतीय सिनेमा को खड़ा करने में महती योगदान दिया है और हाल के वर्षों में तो यह योगदान काफी बढ़ा है। आप किसी भी फिल्म के सेट पर चले जाइए, बड़ी तादाद में आपको महिलाएं ऐसे-ऐसे काम करती हुई मिल जाएंगी जो कुछ समय पहले तक सिर्फ पुरुषों के लिए ही आरक्षित समझे जाते थे। तो अहम मानना न मानना जैसा सवाल ही पैदा नहीं होता। वे तो अहम हैं, थी और रहेंगी।

तेजस पूनिया : *हिंदी फिल्मों में महिला केन्द्रित फिल्मों ने फेमिनिज्म को किस हद तक बढावा दिया है ?*

दीपक दुआ : सबसे पहले बात यह कि आप फेमिनिज्म की क्या परिभाषा मानते हैं मैं नहीं जानता, परन्तु महिला अधिकार, महिला सशक्तिकरण आदि ये सब उसी के पहलू या अंग कहे जा सकते हैं, दरअसल फैमिनिज्म वही है। ना कि वह जो तथाकथित पुरुष और महिलाएँ इसके नाम पर सिर्फ दैहिक स्वतंत्रता की माँग करते हैं। आज हर कोई अपने हिसाब से इस शब्द के मायने निकाल रहा है। लेकिन मेरी नजर में फैमिनिज्म वही है जो एक औरत को औरत होने के अधिकार से महरूम ना करे। हिंदी फिल्मों में फैमिनिज्म या नारीवाद की बात करूँ तो 'क्वीन' जैसी फ़िल्मों को मैं अच्छी नारीवादी फिल्मों में शामिल करूँगा। बाकि

रही बात इसे बढ़ावा देने की तो साहित्य और सिनेमा दोनों ने इसे अपने अपने स्तर पर बनाया और बिगाड़ा है।

तेजस पूनिया : *भारतीय फिल्म उद्योग में महिला निर्माता, निर्देशक की भूमिका को कितना अहम और जरूरी मानते हैं ?*

दीपक दुआ : ये अपने आप में एक विडम्बना ही है भारतीय सिनेमा की, जिसमें बेहतरीन महिलाएँ निर्माता एवं निर्देशक के रूप में हमें मिलीं, परन्तु इसमें पुरुष सत्ता हमेशा से हावी और काबिज रही है। तो उन महिलाओं को इतना महत्व नहीं मिल पाता। हालांकि बहुत सारी महिला फिल्मकार हुई हैं और एक सच यह भी है कि महिलाओं द्वारा रचा जाने वाला सिनेमा संवेदना के स्तर पर एक अलग ही मुकाम हासिल करता रहा है। आप तनुजा चन्द्रा या मेघना गुलजार का सिनेमा ही देख लीजिए। मुझे ऐसा लगता है कि यदि इनकी बनाई फिल्मों को किसी पुरुष निर्देशक ने बनाया होता तो कदाचित वे फ़िल्में उस तरह से न बन पाती, जिस तरह से वे बनीं। अक्सर मुझसे बातचीत में कई अभिनेत्रियों ने भी यह माना है कि किसी महिला फिल्मकार के साथ काम करते हुए वे एक अलग किस्म की सहजता महसूस करती हैं। तो फर्क तो पड़ता है, भले ही थोड़ा पड़े, कभी-कभी पड़े।

तेजस पूनिया *: भारतीय फिल्म उद्योग में उषा खन्ना, जद्दनबाई जैसी दूसरी वर्तमान में संगीत निर्देशिकाएं नहीं हैं, इसके बारे में आपके क्या विचार हैं ?*

दीपक दुआ : हाँ, यह बात काफ़ी चिंताजनक है कि संगीत-निर्देशन के क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति लगभग शून्य रही है। जो कुछ एक नाम चमके भी उन्हें हम सिर्फ अपवाद ही मान सकते हैं। पता नहीं ऐसा क्यों हुआ लेकिन बतौर संगीतकार महिलाओं की तरक्की के ज्यादा उदाहरण हमें देखने को नहीं मिलते। हालांकि मुझे लगता है कि मौजूदा समय में यह तस्वीर अगर बदले तो शायद फिल्म-संगीत का ज्यादा भला हो सकता है।

तेजस पूनिया : *हिंदी फिल्मों में महिला निर्देशकों की तरह ही लेखिकाएँ भी बहुत कम उभरकर सामने आ पाती हैं क्या महिलाएँ आज भी अदाकारी के नाम पर दिखावे का प्रतीक है ?*

दीपक दुआ : मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। लेखिकाओं ने हमारी फिल्मों को हमेशा अपने योगदान से समृद्ध किया है और अभी भी लगातार कर रही हैं। इस्मत चुगताई, शमा जैदी, हनी ईरानी रही हों या अभी की जोया अख्तर, मेघना, अलंकृता श्रीवास्तव, फराह खान, अन्विता दत्त, इनके योगदान को आप अनदेखा नहीं कर सकते।

तेजस पूनिया : *फिल्मों में गीतों को लें तो, आज के समय में गीत मर रहे हैं ऐसा लता मंगेशकर ने भी एक बार कहा था, क्या आप मानते हैं कि अब पहले जैसे सदाबहार गीत अब हमारे गीतकारों के पास नहीं है ?*

दीपक दुआ : नहीं ऐसा कतई नहीं है। हाँ कुछ एक जगह या अपवाद स्वरूप ये बात लागू होती है और यह बात उस जगह के लिए भी लागू होती है जहाँ पुराने गानों को रीमेक करके बनाया जा रहा है। ये कभी उस फिल्म के हिसाब से फिट बैठते हैं तो कभी नहीं और गीतकारों की तो कोई कमी नहीं है एक से एक अच्छे गीतकार, गीत निर्देशक हमारे पास मौजूद हैं जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। उदाहरण के लिए इरशाद कामिल को ही लीजिए। तो ये सब तो फिल्म के मूड के हिसाब से भी निर्भर करता है कोई - कोई फिल्म के गाने इतने हिट हो जाते हैं कि उसे सुनने वालों में से अधिकाँश को यह पता ही नहीं होता कि यह गाना किस फिल्म का है। अब आप विनोद खन्ना की फिल्म जुर्म को ही लीजिए इस फिल्म का एक गाना 'जब कोई बात बिगड़ जाए' इतना हिट हुआ की यह आज भी लोकप्रिय है लेकिन इसके बारे में बहुतों को नहीं पता की यह किस फिल्म का गाना है । तो ये सब तो कहने की बातें हैं कि गीत नहीं है या गीतकार नहीं हैं।

तेजस पूनिया : *भारतीय फिल्म उद्योग में कास्टिंग काउच के बारे में आप क्या कहेंगे ?*

दीपक दुआ : कास्टिंग काउच सिर्फ हिंदी फिल्म उद्योग में ही नहीं होता अपितु यह क्षेत्रीय फिल्मों से लेकर विदेशी फिल्मों में भी आम बात है। कई बार नए लोग जो फिल्मों में काम करना चाहते हैं या नाम कमाना चाहते हैं तो इस रास्ते से फिल्म में काम ढूंढते हैं। ये तो उनका अपना समझौता होता है। समझौता खुद से भी और फिल्म के निर्माता, निर्देशकों से भी। यह हर अदाकार या अदाकारा का अपना निजी फैसला होता है कि उसे इस तरह के समझौते करने हैं या नहीं। एक बात और, कास्टिंग काउच की यह समस्या सिर्फ फ़िल्म इंडस्ट्री में ही नहीं, करीब-करीब हर क्षेत्र में मौजूद है। अध्यात्म से लेकर बिजनेस इंडस्ट्री तक के उदारहण सामने आ चुके हैं।

तेजस पूनिया : *इधर अभिनेताओं पर बायोपिक बनने लगी हैं। संजू अभी आई है। बॉलीवुड की किस महिला कलाकार पर बायोपिक बननी चाहिए ?*

दीपक दुआ : (हँसते हुए...) संजू कोई बायोपिक थी ? वो तो महज छवि चमकाने का अभियान था। फिल्म इंडस्ट्री की किसी महिला पर बायोपिक बनने की बात करूं तो मुझे लगता है कि लता मंगेशकर पर एक बेहतरीन बायोपिक बनाई जा सकती है। 13 साल की उम्र में पिता को खोने वाली इस लड़की का संघर्ष अनूठा है। जिस चरम को लता जी ने छुआ वह भी अद्भुद है। इसके अलावा सुरैया पर भी एक अच्छी बायोपिक बन सकती है। खासतौर से उनकी देव आनंद के साथ की नजदीकियों को उकेरते हुए। बायोपिक ऐसी होनी चाहिए जो समाज को प्रेरणा दे और उस व्यक्ति के संघर्ष के दिनों में भी न डगमगाने का एक पॉजिटिव संदेश दर्शकों को देती हो।